महाराष्ट्र दिग्दर्शन ग्रन्थमाला पुष्प १

महाराष्ट्र नेता रामदास

(प्रथम भाग)

लेखक—गणेश

पं० शिवकंठजी तिवारी के प्रबन्ध से

'श्रीकृष्ण छापाखाना' कानपुर में मुद्रित होकर

महाराष्ट्र दिग्दर्शन ग्रन्थमाला

से

प्रकाशित हुआ

प्रथम संस्करण १०००	ता० २४ अ० सन १९१४	मू० =)॥

महाराष्ट्र दिग्दर्शन ग्रन्थ माला के
"स्थायी" ग्राहकों के नियम.

(१) इस माला द्वारा एक वर्ष में कम से कम १२ और अधिक से अधिक १८ ग्रन्थ प्रकाशित होंगे। (जो 'स्थायी') ग्राहक हैं उन्हें इन पुस्तकों की व्ही. पी. का स्वीकार करना होगा

(२) इस माला के 'स्थायी' ग्राहक बननेके लिये प्रति वर्ष के आरंभ में ॥) आना प्रवेश फी भर देनी होगी। यह फी किसी दशामें ग्राहकों को वापिस नहीं दीजायगी।

(३) माला की जो पुस्तेक प्रकाशित होगी उसके मूल्य के आधे दामों में वी. पी० द्वारा स्थायी ग्राहकों को भेजी जायगी। वी० पी० खर्च ग्राहकों को देना होगा। स्थानीय ग्राहक माला के कार्यालय से लेकर वी० पी० खर्च बचा सकतेहैंपर इसकीसूचना हमे पहिलेही देदेना उचित है।

(४) स्थायी ग्राहको को उचित है कि अपने पत्र व्यवहार में अपना ग्राहक नंबर अवश्य लिखें।

(५) एक या दो मास के लिये अपना पता बदलवाना हो तो ग्राहक स्वयं डाकखाने से उचित प्रबंध करलें। इस से अधिक काल के लिये परिवर्तन करना हो तो हमे उचित सूचना देने से योग्य प्रबंध हो सकता है।

(६) ग्राहक अपना नाम ग्राहक श्रेणी में चाहे जिस मास से दर्ज करा सकते हैं। उसी महीनेसे उसग्राहकका वर्षारंभ समझा जायगा।

❀ भूमिका ❀

जिस समय सारा हिन्दुस्तान यवनों ने आक्रमण कर लिया था, जिस समय भारतवर्ष पर मुसलमानों का राज्याधिकार सुरक्षित थां और जिस समय हिन्दू समाज में हिन्दुत्व का लोप हो चुका था, उस समय जो अनेक पुरुष महाराष्ट्र के साथही भारत के उद्धार के लिये निर्माण हुवे और जो अपने धैर्य, देश प्रेम और स्वधर्मानुराग द्वारा सारे समाज को चकित कर गये उन्हीं थोर विभूतियों के शिरोमणि और उस समय के सामाजिक धार्मिक तथा राज नैतिक आन्दोलन के प्रवर्तक और संचालक श्रीमद्रामदास का जीवनचरित्र भारत के लिये एक अपूर्व विषय है। अतएव उसका प्रचार हिन्दीमें आवश्यक समझकर मैंने यह अल्प प्रयत्न समाज के सामने प्रस्तुत करने करने का धैर्य किया है।

मैं हिन्दी भाषासे अनभिज्ञ हूं। अतएव प्रस्तुत भाषा के नियमों के अनुरुप इस चरित्र लेखमें त्रुटिया होनेका संभव है। और हिन्दी साहित्यका एक प्रकार से अपमान होना संभव है। परन्तु मुझे आशाहै कि साहित्य सेवी रसिक भाई मेरे शिशुवचन मानकर मुझे अपनाएंगे। अंतमें भारत की उन्नती के लिये उस परमेश्वर तथा ग्रन्थनायक श्रीरामदाससे प्रार्थना करते हुए इस अल्प बिनंति लेख को समाप्त करताहूं

कानपुर } आपका नम्र सेवक

गणेश

'माला' का उद्देश ॥

भारत वर्ष के सभी बिभागों के भाइयों को अपने देश के दूसरे विभाग के भाइयों के लिये प्रेम तथा सहानुभूति प्रकट करना आवश्यक है। हमारे समाज में भारत के सब विभागों को प्रेम तथा एकयता के बंधनो से बांधने का आन्दोलन प्रति दिन बढ़ता जाता है। हिन्दी भाषाभाषियों को महाराष्ट्र के वीर चरित्रों का, धार्मिक तथा नैतिक सत्पुरुषोंका तथा अनेक प्राचिन और अर्वाचिन साहित्य का परिचय होना आवश्यक है। महाराष्ट्र के साहित्यका कुछ स्वाद अनेक लेखकों के प्रयत्न द्वारा हिन्दी भाषा भाषियो को हो गया है। और उसके रस पूर्ण मधुर स्वाद को देख उनको उसके प्राप्त करने की लालसा प्रति दिन बढ़तीही जाताहै। पर स्वयं महाराष्ट्र भाषा से अपरिचित होने के कारण वे अपनी आकांक्षा पूर्ण नहीं कर सकते हैं। इसी अभाव को दूर करने के सद्हेतु से तथा महाराष्ट्रका साहित्य हिन्दी संसार में प्रचलित करने की इच्छा से इस ध्येय को अपने सामने उपस्थित रखकर माला ने अपनी कार्य प्रणाली नियत की है। इस उद्देश को सुलभ करने के लिये लोकाश्रय की आवश्यकता है। अतएव यह प्रबल आशा करते हुवे कि हमारे "हिन्दीभाषाभिमानी रसिक बंधुगण हमें इस कार्य में सहाय्य प्रदान करेंगे और हमारे उत्साह को बढ़ावेंगे, हम अपने इस बिनती लेखको पूर्ण करते हैं।

श्रीः

"महाराष्ट्र नेता रामदास"

चाहे जो समाज या राष्ट्र क्यों न हो उसका अभ्युदय तथा उन्नति उस समाज या राष्ट्रके परोपकारी नीतिमान सदाचारी तथा धर्मानुरागी सज्जनोंके सत् चरित्रों परही विशेषतः निर्भर हुआ करता है। कारण श्रीकृष्ण भगवान् ने तो पहिलेहीसे कह रखा है:—

यद्यदा चरति श्रेष्ट स्तत्तदेवे तरोजनः ॥
सयत् प्रमाणं कुरुते लोक स्तदनुवर्त्तते ॥२१ गी० अ० ३

अर्थात् समाज में जो श्रेष्ट है अर्थात् जो उस समाज के नेता है उनके कृति का, उनके आचार विचार काही अनुकरण साधारण जन समूह करने लगजाता है। सामाजिक प्रश्न को हल करने का कार्य प्राय: इन्हीं श्रेष्ट पुरुषों के आधीन हुआ करता है; समाज के अज्ञान लोग उसके हल करने में स्वयं समय बहुतही कम देते हैं; किन्तु उसी दशामें समाजके श्रेष्ट नेताओं ने क्या कार्य किया है और वे किस युक्ति से उस दशा से उत्तीर्ण हुए इसीका ये लोग खोज करने लग जाते हैं और अन्तमें अनुकरण करने लग जाते हैं। नहीं देखते हैं कि वह उनके लिये लाभदायक हैं या हानिकारक। समाजके श्रेष्ट नेताओं में यदि क्रूरता, कपट तथा सदगुणोंका अभावहो तो उसका प्रति-बिंब समाज के आचार विचार में तथा चित्त वृती में दृग्गोचर अवश्य होने लग जाता है। नेताओं का अपने धर्म में अविश्वास हो और परदेशीयों के आचार विचारको अपने समाजमें लाना लाभदायक समझ कर उन्हीं का अनुकारण करते हो तो कोई विशेष आश्चर्य की बात नहीं है यदि समाज के अज्ञ लोग अपने धर्म को छोड़दे और दूसरों के धर्मों का स्वीकार करलें

जब तक समाज में श्रेष्ठत्व उन्हीं लोगों को दिया जाता है जो कपटी–स्वार्थी और दुराचारी है, जो अपने धर्म में अविश्वास रखते हैं या उसीके विरोधी है; और उस श्रेष्ठत्व का दुरुपयोग करते हैं तब तक उस समाज का, उस राष्ट्र का या उस धर्मका सुधार- उन्नती होना नितान्त असंभव है। इन सच्छील थोर विभूतिओं के सहवास से, दर्शनों से और उनके सुधातुल्य उपदेशों से समाज निकृष्ट का विभाग-अज्ञान जन समूहको नीति उद्योग, कर्तव्य, दतन, शुद्धाचरण, परोपकार, इत्यादि अनेकों सद्गुणों का लाभ हुआ करता है। और इन सत्पुरुषोंके उद्योग से इन सद्गुणों के समृद्धी होनेपर उसके उत्कर्ष के लिये विशेष विलंब नहीं लगता है। हमारे भारतभूमी पर, प्राचीन काल में रामचन्द्रादिक सत्पुरुषोंके समान अनेक महा पराक्रमी सत्वशील तथा धर्म वीर भूपति, विक्रमशालिवाहनकेतुल्यशककरता राजे तथा प्रताप, शिवाजी के तुल्यदेशभक्ततुकाराम, रामदास, तुलसीदास के समान धर्म संस्थापक व नितान्त वैराग्यशील साधू निर्माण हुए। इन्ही महानुभावों के उद्योग का यह फल है कि अपने स्थान से भ्रष्ट होने पर भी भारत वर्ष कुछ मान का भागी है।

इन्ही सन्तों के चरित्रों द्वारा, उपदेश द्वारा तथा लेखों के द्वारा भारत की उन्नती हुई है। यदि भारत इन्ही सन्तों से आज तक भरा पूरा रहता तो आज जिस दशा में वह फँसा हुवाहै, अधर्म के जिस घोर अंधकार में उसका लोप होगया है और जिस स्थान से वह भ्रष्ट होगया है उस दशा में वह कभी नहीं फँसता, अधर्म का नाम भी न रहता और अपने उच्च स्थान से भी उच्च तर स्थान पर बिराजमान होकर अपने तेज से संसार को प्रकाशित करता। आज भारत देश में पवित्र आर्यावर्तमें जो अत्याचार, आवर्षण और दुर्दशा फैल रही है, उनका जन्म तक भी न होने पाता। पर काल चक्र का फेरा दुर्दैवी भारत देश और भारत धर्म पर ऐसा हुवा कि ये सब सौख्य स्वप्नवत् होगया। रणधीर, धर्मवीर तथा कर्मवीर राजा भी चल बसे और उन पुरुषों के साथही धर्मने भी अपने पैर उखाड़ लिये। धर्म का स्थान स्नेहने खींच लिया, प्रेम की बिक्री होने लगी और सहाय्य वृत्ती के स्थान में परस्पर स्पर्धा (Competition) का आविष्कार हुवा। हिंदु समाज के उन्नती का मूल, उसके सौख्य का आदि कारण अर्थात् धर्म का पूर्ण रूप से लोप होगया, कुरितियों का हिन्दी संसार में बिस्तार

हुआ, परकीय म्लेच्छों के आचार विचार का अनुकरण होने लगा। अपने धर्म में अविश्वास बढ़ गया दूसरोंके धर्म तत्वों पर कुछ प्रेमसा जम गया। अन्तमें धर्मको त्याग करके अपने पूर्वजों के बचन कार्ति पर, अपने पूर्वजों के शौर्य धैर्य पर, देश सेवा पर और धर्मश्रद्धा पर नितान्त निर्लज्जताके साथ अवि श्वास और मूर्खता का काला पोता फेर दिया। धर्म को तत् पश्चात् समाज को और अन्तमें देशके स्वातंत्र्य को नष्ट भ्रष्ट कर डाला। हमारे धार्मिक राष्ट्र, अवनति के असार सागर के दुख मय तरंगों में उमंग लेने लगा। धर्म और नीति के स्वाभा विक बंधन शिथिल होगये, पूर्वजों के आचरितों से चाहे जैसे अनुकरणीय क्यों न हो हमारा विश्वास उड़ गया। अन्त में संसार के कुल दुःखोंने, दुर्गुणोंने और अनेकों संकटोंने भारत वर्ष पर आक्रमण किया और उसे पदाक्रान्त करके उसीमें अपना निवास स्थान नियत किया।

इस कुदशा को सुधारने के लिये अनेक उपाय रचेजातेहैं। कोई सभा निकालता है तोकोई वृत्तपत्रों के द्वारा अपने २ तत्व को प्रकट करता है। कोई अबलोन्नति समाज, कोई 'यंग मेन असोसिएशन क्लब' कोई पिकेटींग, तो कोई कुछ कोई कुछ

समाज या सोसाइटी के स्थापित करनेमें दंग है। हमारे कहने का आशय यह है कि हिन्दू भारतवासी जागृत होकर अब अपनी समाज की उन्नती करना चाहते हैं। यदि उन्नती करने की इच्छा न करते तो हमारे देश में जो आज विद्यमान हैं वे सभाएं, समाजें और नेतागण अवतरित न होते। हमारा यह कथन नहीं है कि इन सोसाइटी-समाजों से हमारे देश को या राष्ट्र को कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। लाभ तो अवश्यही हुआ पर उसका परिणाम जहां तक हम देखते हैं चिरकाल स्थायी नहीं हुवा। इतनाही नहीं किन्तु इन समाज, सोसाइटीयों ने व लेखोंने हिन्दू समाजमें असंतोष, असमाधान, परस्परविरोध और अनेक समाज सौख्य व शान्ति के मारक दुर्लक्षणों का प्रचार प्रति दिन बढ़ादिया है। धर्म के उन्नती के लिये ऐसा आंदोलन होते हुवे भी धर्म की हानि ही होती जाती है। समाज जागृती के ऐसे उपाय रचे जाने पर भी नेताओं के प्रयत्नों को सुफलता नहीं प्राप्त होती है। अनेक लेख—पुस्तकें प्रकाशित होती जाती है प्रतिदिन नये अविष्कारों का आविर्भाव होता जाता है। अनेकों प्रभावशाली वक्तृताएं भारत वर्ष की चारों ओर

गूंजती हुई सुनने में आती है। पर उन लेखो से वक्ताओं से और पुस्तकों से जिस उन्नत दशाको प्राप्त करनेकी अभिलाषा करते हैं-वह उन्नत दशा आप से तिस पर भी सेंकडो नहीं हजरो हाथ दूर है। क्या कारण है कि ऐसे स्वार्थ त्यागी के प्रत्यक्ष उदाहरण होते हुवे, उन्नती के आन्दोलन प्रति दिन निर्मित होने पर भी तथा भारत की उन्नती के लिये उपस्थित हुवे अनेको नवयुवको के विद्यमान होतेहुवेभी हमभारतवर्षको उन्नती के शोभायुत सिंहासन पर अधिष्ठित नहीं कर सकते हैं। क्या आप दावे से अपनी आत्मा की साक्ष लेतेहुवे कह सकते हैं कि इन सभाओं से इन नेताओंसे और इन प्रयत्नों से हमारे देश की उन्नती हो सकता है या हुई है इस प्रश्नका हल करना निन्तात असंभव है।

इस दशा को सुधारना तो अवश्य है और सुधार तो सभी चाहते हैं परंतु सोच तो इसी बात का करना है कि वह किस प्रकार से होना संभवनीय है। हमारा पूर्वजों के सच्चरित्रों पर अविश्वास का जंग जम गया है उनके कृत्य-चाहे जैसे संभव नीय क्यों न हो चाहे जैसे अनुकरणीय क्योंन हो—आधुनिक शिष्ट महोदय को वे या तो काल्पनिक मालूम होते है या

निरर्थक। बहोत से इनको सत्य मानते हैं पर उनका अनुकरण करना नहीं चाहते हैं; कारण यह कि उनके युक्तियों के द्वारा वर्तमान में लाभ इष्ट उन्नती उपलब्ध नहीं हो सकती। हम इस विचार को तुच्छ समझते हैं। जब तक हमने उसका अनुभव नहीं लिया है तब तक यदि हम इन उपायोंको मिथ्या बतलवै, तो हम उसी काहिल मनुष्य के तुल्य है जो कोई काम करने में असमर्थ होने से उसे टालना चाहता है। हम दावे केसाथ कहसकते है कि यदि हम उन्ही उपायोंकी योजनाकरै जो हमारे पूर्व हमारे वीरपुरुष कर गये हैं तो भारत की उन्नती होने में विशेष विलंब की आवश्यकता नहीं है।

पहिले यह देखना अवश्य है कि हमारी आधुनिक दशा—सामाजिक तथा धार्मिक उसी समय की दशा के समान है या नही जिस को कि हम अपना लक्ष्यबिंदू समझना चाहते हैं।

महम्मद घोरी से लेकर मोगल बादशाह औरंगजेब तक बहुधा सबी यवन राजाओं की हमारे हिन्दुधर्म पर, हिन्द राष्ट्र पर और हिन्दुत्व पर वक्र दृष्टि रही सबी मुसलमान चाहते थे की हिन्दू का नाम तक इस संसार से चला जाय। हिन्दू धर्म के महत्व को न समझ कर हिन्दू धर्मावलंबियो के साथ

अनेक प्रकार के अत्याचार क्रूरता और छल कपट होने लगे। हिन्दुओं के धार्मिक भवन-मंदिरों का नाश होने लगा जिन मूर्तियों को हिन्दू अपना पूजनीय समझते थे उनका इन दुष्ट यावनि बादशाहो के खड्गों के लक्ष्य बने उनको अस्त्र शस्त्रों से खण्डप्राय कर डाला और साथही हिन्दुओ के हृदय में स्थित सद्वासनाओंको भी नाशकर डाला। हिंदुओंको उस समय केवल राष्ट्र स्वातंत्र्यही के लिये नहीं लड़ना था तो जो सुख या शांतता वे चाहते थे वे बिना विशेष प्रयास या प्राण संकट के नहीं पासकते थे। हिन्दुओ को सम्पत्ती रक्षा का भय, अवला तथा बाल बच्चों के प्राण तथा विशेष कर उनके इज्जत की रक्षा में भी बाधाएं उपस्थित थी। प्रत्येक हिन्दू मात्र को एक हाथ में शस्त्र व दूसरे हाथ में अपने सौख्य का साधन रखना पड़ता था। मुसलमानोंने युद्ध मेंही नहीं किन्तु शांतता के समय में भी अपने अत्याचार को न छोड़ा। हिन्दुओ को अपने धर्म के कर्मो को पूर्ण करते हुये जहां जैसा पाया उसी स्थान पर और वैसेही या तो उन्हें प्राणोंको अर्पण करना पड़ा या उनके धर्मको मान कर अपने जीवनकी रक्षा करनापड़ती थी। कोई त्राता नहीं था कहीं भी भागकर अपने दुखोंको न ही

बतला सकते थे। किंबहुना भागनेको न अवसर था और न कोई स्थान। अस्त्रों के होते हुवेभी इन संकटोसे अपना छुटकारा नहीं करसकते थे। अनेकों हिन्दुओने अपने हिन्दुत्वको छोड़कर कोई इस पेट या संसार के अशाश्वत सुखके लिये, कोई अधिकार या उच्च स्थान प्राप्त करने के स्वार्थ पूर्ण इच्छा से और अनेक तो केवल अंध अनुगामी बन कर अपने हिन्दुत्व को छोड़ बैठे। और परधर्म ।का अर्थात् यावनी धर्म का प्रखर यमपाश अपने गले में कोई प्रेम से या हठ से धारण करने लगे। अपने धर्म में अविश्वास करने लगे। यावनि धर्म के आचार विचार में उनकी अभिरुचि प्रति दिन बढ़ती गई और अलपही अवकाशमें भारत की ठीक वही दशा उस समय अधिष्ठित थी जो हम अपने धर्म विभागमें आज देख रहे हैं। भारत वर्ष जब यावन दुष्टता व अत्याचारसे पीड़ित होने लगा, रजपूत अर्थात हिन्दु समाज के संरक्षक हतवीर्यःहोकर अपना युवती धन—अपने माता बहिनो को निर्लज्जताके साथ केवल परदेशियो से मान आदर पाने के स्वार्थ पूर्ण बुद्धी से यवनो की सेवा में अर्पण करने लगे। जिस प्रकार हमारे नव युवक इस विज्ञान युग में

राम राम या अन्य प्रकार के हिन्दी प्रणाम प्रणाली को छोड़ गुडनाईट, गुड मार्निंग इत्यादि शब्दों का प्रयोग बड़े ही दिमाक से किया करते है। ठीक वैसेही उस समय हिन्दू समाज के यावनी प्रणाम प्रणाली का विशेष रूपसे आविर्भाव होगया था कोटपेन्ट, नेकटाय इत्यादि आंग्ल आभूषणों को जैसे आज हमारे समाज में मान तथा प्रतिष्टा है वैसेही यावनी काल में उनके पोषाक और अनेक आभूषणों का हमारे समाज में अनुकरण देख पड़ताथा। हम तुलना केवल हमारे धर्म हीमें करना चाहते है कारण धर्म ही उन्नती का आदि कारण समझा गया है। आज की दशा में इतनाही अधिकतर है कि हमको धर्म त्याग करने लिये हमपरकिसीप्रकारका प्रत्यक्ष अत्याचार नहीं किया जाता है और न हमको स्वधर्म रक्षा के लिये जीवन हानि का कोई भय है।

इस प्रकार जब धर्म की हानि होचुकी, हिन्दु समाज के जातीय प्रणाली के प्रेम मय बन्धन छूटगए, और जब चारों ओर निरुत्साह, धर्म ह्रास, तथा दुराचारफैलगया उसी समय जाना गया कि श्रीकृष्ण भगवान के उक्तिके अनुरूप भारतवर्ष

में भारत के संकटों को दूर करने के लिये और धर्म की ध्वजा फहराने के लिये अवतार होनेका समय समीप आया हुआ है धर्म ग्लानी का, अत्याचारका, और हिन्दुओं के व्यथाओं की एक अवधि हुआ करती है उस अवधीके पूर्ण होजाने के पश्चात अवतार होने का समय आताहै ।

धर्म की ग्लानी तो अवश्य होगई थी पर हिन्दु तेज का लोप नहीं हुआथा। ऐसी कुदशा में भी अनेक धर्मवीरथे जो अपने धर्म को श्रेष्ठतर समझ कर उसके लिये प्राण तथा जीवन सर्वस्व को भी अर्पण करदेतेथे। ऐसे शूर क्षत्रियवीर रजपूत विद्यमानथे जोअपने शत्रुकोरणमेंकभीपीठनहींबतलातेथ किन्तु मरना स्वीकार करतेथे पर कभी नहीं हटतेथे । मालो जी, शहाजी, जसवन्तसिंग इत्यादि अनेकानेक मराठे तथा राजपूत वीर पुरुष विद्यमान थे और यदि करना चाहते तो देश की उन्नती करसके थे। मुसलमानों के राज्य यदि इन्हीं वीरों के बाहुबल से स्थापित हुये, यदि उन राज्यों की शान्तता सुख और सुरक्षितता इन वीर पुरुषों के बुद्धीबल और चातुर्य पर निर्भरथा, यदि यावनी राज्यके ये पुरुष आधारभूत मानेजाते

थे, तो कोई आश्चर्य नहीं कि ये सब यदि देश सेवा और धर्म सेवा करने की आकांक्षा रखते या देशको या धर्म को स्वतन्त्र करना चाहते तो करने के लिये सब प्रकार से समर्थ थे। आ-धव, मालोजी, शहाजी, मानसिंग, जसवन्तसिंग ये साधारण व्यक्तियां नहीं थी। इनलोगों का जन समूह पर पूरा दवावथा चाहे जो करसके थे तो उस समय देश तथा धर्म कीस्वतन्त्रता के लिये युद्ध की चेष्टा क्यों नहीं की गई। इन वीरों ने दूसरों की सेवा करना छोड़ अपने देश तथा धर्म सुधार करने का विचार क्यों नहीं किया। क्या इनको कोई विशेष भय था ? क्या ये असमर्थ थे ! जो घटना जो विचार क्रांति केवल ३०।३५ वर्ष के अनन्तरहुई वह उस समय पूरा क्योंकर प्रचलित नहीं होगई। इसका कारण भारतवर्ष के इतिहास का परिशीलन करने से मालूम होसक्ता है, भारत के इतिहास का सूक्ष्म निरीक्षण करने से प्रगट होजाता है कि जितने महत्व पूर्ण राजकीय या सामाजिक—धार्मिक आविष्कार अथवा राज्य क्रांतिकारक आन्दोलन हुआ है उन सभी घटनाओं का मूल कारण प्रायः धर्म ही हुआ करता है।

शिवाजी के पूर्व वीर, धीर, पुरुषसच्चेदेशाभिमानी और

नितान्त धर्म शील सज्जन पुरुष विद्यमान थे और समर्थ भी थे ब्राह्मणी राज्य आदिलशाही, कुतुब शाही, इमादशाही, निजामशाही तथा बरीदशाही ये सब मुसलमानों केही रियासते थी पर इन सभी राज्यो के प्रधान सूत्र प्रायः हिन्दुओ केही हाथ में हुआ करते थे। मोगलोंके राज्य में ऐसे अनेक पुरुष हिन्द वीर थे जो यवनो के सहायक बने और उनको अपने भारत बीजका परिचय दिलाया। मोगल राज्य में ऐसा मान व प्रतिष्ठा हिन्द नहीं पासकते थ जितना वे दक्षिण के यवनो से पाया करते थे। दक्षिणी रियासतों को मोगलों की तरह उत्तर से उनके जात भाइयों की सहायता नहीं मिल सकती था उनके राज्य का उनके अधिकार का अस्तित्व हिन्दू प्रजा के शांतता तथा सतुष्टता परही निर्भर था इनके राज्य में राज्य के उच्च अधिकार हिन्दुओ कोही मिला करते थे। यदि वे दुसरों के राज्य स्थापित कर सकते थे, यदि वे दूसरो के राज्य के आधारभूत माने जाते थे और यादि राजा उनके सामने नाम मात्र के थे तो क्या ये शूरवीर पुरुष अपने देश का सुधार उद्धार नहीं कर सकते थे ? क्या वे अपने देश की सोचनीय दशा को नहीं जानते थ क्या अपने

बाहुबल द्वारा वे स्वतन्त्र हिन्दी राज्य नहीं स्थापित करसकते थे अवश्य कर सकते थे । पर राजक्रांती के लिये आवश्यक जो धर्म क्रांती उसका जितना चाहियेथा उतना आन्दोलन नहीं हुआ था । रणधीर थे पर धर्मवीर का अभावथा । धर्म प्रसार के लिये संतो की, धर्म नेताओं की आवश्यकता थी । ज्ञानदेव, तुकाराम, एकनाथ, दामाजी, तुलसीदास, कबीर, नानकइत्यादि अनेकधर्मवीर ब्राह्मणों तथा ब्राह्मणेतर जातियोंमें अर्थात क्षत्रिय वैश्य इत्यादि जातियों में भारतके समस्त विभागों में सन्त समाज नेता निर्माण हुये । ये सब नेता प्राय: ऐसेही थे जो जो धर्म की जागृती—उन्नतीही की हो अपना जीवनकर्तव्य समझतेथे । जानते थे कि जबतक सर्व साधारण हिन्दू स-माज में स्वधर्म जागृती का आविर्भाव नहीं होगा, या जब तक स्वधर्म में उनका विश्वास दृढ़ नहीं होगा, तबतक राज कारण के महत्व पूर्ण समस्या को हल करना उनके लिए एक कठिण बात है । यही कारण हैं कि उस समय के भा-रतीय नेताओं ने देश स्वातन्त्र्यादि विचारों को तुच्छ मान

कर स्वधर्मोन्नती प्राप्त करने में काल, बल, तथा आय का व्यय किया। क्योंकि जानते थे कि सब उन्नती का केन्द्र तथा सब अविष्कारों का मूलतत्व धर्मसुधारही में अधीष्टित है इसी कारण उनके लेक्चर तथा लेख पुराणों के विक्षिप्र घटनाओं पर या धार्मिक तत्वों के हल करनेकेही हेतु हुआ करते थ। भारतवर्ष में प्रायः जितने सन्त अर्थात् येनेता निर्मित हुए हैं उनमें अधिकांश ऐसेही देख पड़ते हैं जिन्हों ने रामायण का महाभारत का उत्था अपने २ वृत्तों में प्रकाशित किया है रामायण तथा महाभारत की कथायें भारत संसार में प्रचलितहुई। सर्व साधारण अज्ञान हिन्दुओं को अपने सुयोग्य पूर्वजों की उदारता, और धर्मलोलुप्ता चातुरता वीरता और बुद्धिमत्ता का परिचय, इन ग्रन्थों के द्वारा प्राप्तहोने लगा। पूर्वजों की धर्मश्रद्धा को देखकर उनका भी अनुराग धर्म में बढ़ता गया। उनका भी विश्वास दृढ़ होतागया। इनके पौरुष को देखकर ये भी धर्म पर अपना जीवित तक न्योछावर करने में उद्युक्तहुए। धर्म का अपमान होतेहुवे देख उनको संसार के सारे सुखको लाघ मारने तकके

के लिये भी वे कभी आगा पिच्छा नहीं कर सकते थे। इतना ही नहीं किन्तु धर्म रक्षा एक पवित्र कार्य समझ कर उस के लिये मरना भी शुभ तथा मोक्ष दायक समझने लगे।

देश सेवाकी दीक्षा लेने के पूर्व ये सत्पुरुष प्रथम परमेश्वर प्राप्ती का यत्न करते थे और इस प्रकार मानसिकबल प्राप्तकर ये सब भारत वर्ष के सब विभागों में पर्यटनकर साधारण जन समूह के प्रकृती गुण, आचार विचार, अभिरुचित था और २ बातों का निरीक्षण करते हुए और भारतवर्ष के अधोगती को स्वयं अपनी आखों से देखते हुए उसके उद्धार की उपाय योजना किया करते थे। उनका देश पर्यटन, उनके कार्य और उनके आचार विचार सभी स्वार्थरहित परोपकार से परिप्लुत हुआ करतेथे। अपनी इस यात्रा द्वारा जब उन्हे मालूम हुआ कि भारत देशकी घड़ी बिगड़ी हुईहै भारतके गौरव पर आघात हो रहाहै, धर्म का त्याग और दूसरों के धर्मका प्रचार देश में प्रचलित हो रहाहै और अपने स्वार्थ के लिए या परदेशियों को केवल प्रसन्न करने के ही लिये अपने देश भाइयों के सुख साधन तथा स्वातन्त्र्यका हिन्दु ही लोग नाशकरतेहैं तबउन्हें कर्तव्य

निष्टता, धर्मपरायणता, देशप्रेम, और समता इत्यादि गुणों से सुशोभित करने के लिये इन नेताओं ने योग्य उपाय की योजना करना चाहा। भारत वर्ष प्राचीन काल से अपने गुणों के लिए प्रसिद्ध है। हमारे इतिहास में देशप्रेम के, धर्म परायणता के अनेक उदाहरण हैं। इन संतोने रामायण, महाभारत के चरित्र कथाओं द्वारा तथा अन्य उदाहरणों द्वारा साधारण जनसमूह के चित्त में उक्त सद्गुणों का शनैः२ बीजारोपण करना आरम्भ किया। उनको समझाया कि जिस प्रकार हमारे पूर्वजों ने किया है यदि उसीका अनुकरण किया जाय तो अपने देह का उद्धार और देश माता की सेवा दोनों साध्य कर इस प्रकार स्वार्थ व परमार्थ दोनों मनष्य सुलभ कर सकता है। समाज की अभिरुची को देख अपने २ वृत्तों में ये कथाएं कथा पुराण भजन इत्यादि मार्गद्वारा प्रसिद्ध होने लगी। इनसंतो के शिष्य स्वयं हस्ताक्षर से उन ग्रन्थो को लिखकर अपने पास संग्रहित कर रखते थे।

पाठक! ध्यान रहे कि वही रामायण की, महाभारत की कथाएं आज भी सब भाषाओं मे तथा नृत्यों मे इंग्रेजी और अन्य विजातिय भाषाओं में भी भारत संसार मे प्रचलित है

और किसी न किसी रुप मे प्रति दिन प्रकाशित होती ही जाती है। जा कुछभी लिखना पढ़ना जानते है वेभी इन पुस्तको से लाभ उठा सकतेहै। हमारे लिए प्रेस है और अनेक सुखके साधन है। जो किताबे या ग्रंथ हमारे पुर्वजो को प्राप्तनही थे वह आपकी उन्नतीकी लालसा को देख नित्यशः प्रकाशित होरहे है। शिवाजी के समय या पूर्व न प्रेसही था। औरन तत्संबधी और बातें। इतनाही नही किन्तु उस समय इन शब्दोसे भी ये लोग परिचय नही रखते थे। इसप्रकार हमारे लिये उन्नती केइतने साधन होते हुये और वही ग्रन्थ-वही कथाए विद्यमान होते हुये भी हमें कष्टसे कहना पड़ता है कि तिलभरभी उन्नती हम से लाखों हाथ दूरहै। क्या कारण है कि इन्ही ग्रन्थों और कथाओं द्वारा जा हमारे लिये भी सुलभ है प्रकाश करने के अर्वाचिन साधनों का पूर्ण अभाव होने पर भी संतो के उपदेश ध्वनी भारत वर्ष के सब निवासियों के कानो में गूंजने लगी और आज उन्ही ग्रन्थों होते हुये उन्नती तो अलगही रही भारत की अवनती ही प्रतिदिन बढती जाती हैं और ग्रन्थों और कथाओं पर अविश्वास बढ़ता जाता है। क्या कारणहै कि इन संतो के जिस उपदेस से :समाजपर परिणाम हुआ, जिस

के द्वारा उन्हो ने हिन्दुओं को कर्तव्यदक्ष बनाकर उनसे देस सेवा के कार्य सिद्ध करवाये उनसे भी ज्यादा प्रभाव शाली वक्ता आज विद्यमान होते हुवे भी समाज नही सुधर सकता है और न उन्हे कर्तव्यदक्ष बन सकते हैं। आश्चर्य की बात कि आज इतने साधनो के होते हुवे तथा सभा सोसाइटी तथा नेताओं की खूब रेलचेल होते हुवे उन्नती के वह चिन्ह आज अभी तक दृग्गोचर नही हैं जो इन संतो के प्रयत्नो ने और उपदेशो ने अल्प ही काल में प्राप्त किये थे। उस समय कोई साहित्य सम्मेलन नही था इतिहास संशोधन की आवश्यकता नहीं थी। प्रकाशक तथा संपादक के नाम तक मालूम नहीं जो कुछ प्रकाशित करने के साधन थे वह केवल कीर्तन, पुराण, तथा हस्तलेख हीथे। आज लगभग सभी शहरों में तथा कस्बों में—गावों में भी सभा सोसायटी स्थापित हुई हैं और होरही हैं। हमारे हिन्दू भाइयों का उपदेशक, ब्राह्मण इत्यादि शब्दों के स्थान में चेयरमेन अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, मन्त्री, इत्यादि उपाधियों में अनुराग विशेष बढ़ताजाता है। पुराणों की कथायें यदि हमको अविश्वा

सनीय मालूम होती हैं या यदि वे मिथ्या देख पड़ती हैं तो ऐसी दशा में हम उनके द्वारा वह उन्नती नहीं प्राप्त करसक्ते जो इन कथाओंनेही हमारे पूर्व सुलभ कर बतलाई थी। हमारे चित्त की प्रवृत्ती केवल बाहेरी अवडंबर के अनुकरण करने की है। सत्यानुवेशन नहीं रहा। एक ने सभा स्थापित की तो झट से वही भक दूसरे को सवार हुई और फिर तीसरे को अनेक सभाए, अनेक समाज हैं अनेक साप्ताहिक, मासीक सब कुछ हैं पर वह उन्नती नहीं है जो इन सन्तों ने पहिले प्राप्त की था। हमारे प्राचीन नेताओं के लेखोंसे जो परिणाम शांतता और उन्नती समाज में अधिष्ठित थी उस शांतता और उन्नती के स्थान में आज मत्सर, परस्पर कलह, राजद्रोह, अत्याचार धर्मभ्रष्टता इत्यादि अनेक अवनती के उदाहरण प्रत्यक्ष विद्यमान हैं। पहिले अवनती में उन्नता थी और आज उन्नती में अवनती होरही है।

आज हमारे नेता दूसरों के इतिहासोंको देख कर उनद का अनुकरण कर अपने देशका सुधार करना चाहते हैं। देश सुधार के साधनोंके लिये दूसरोंकीमुहकी ओर देखना पड़ताहैं। पाठक ! विचार कीजिये कि कैसे लज्जा की बातां है कि एसे

उदाहरण हमारे इतिहास प्रत्यक्ष विद्यमान होते हुवे भी हम अपने ग्रन्थोंको मिथ्या मानतेहैं और दूसरेका अनुकरण करतेहै।

यह स्वयं सिद्ध है कि उनके कार्य सिद्धो का, और उनके प्रभाव का मूल कारण आत्मोन्नती वह सदा अनुभव पूर्ण हुवा करताथा। संसार स्वार्थमय है अतएव संसारी मनुष्य का कार्य भी स्वार्थ पूर्ण हुवा करते हैं। ये संत संसार के बंधनो से विमुक्त थे, उनको लोभ मोह-क्रोध के बिकार ने स्पर्श तक नहीं कियाथा। वे जितेन्द्रिय थे वे जहां प्रेम और बिश्वास पाते थेवही बैठे अपने अमृत तुल्य वाणीसे कीर्तन द्वारा उपदेश करते थे। पिंडाल की जरूरत नही इलेक्ट्रिक लाईट से प्रयोजन नहीं। लेक्चर कीर्तन करने जाते तो वे कियायेके टट्टू कभी नहीं बनते थे। हमारे कहने का आशय यह है कि उनके जोकुछ कार्य है वे स्वार्थ से जरा भी कलंकित नहीं है अपने कुटुंब के उदरनिर्वाह या औरकोईस सारकेसुखप्राप्तकरने के लिये उनका एक भी प्रयत्न नही था उनका स्वानुभव उनकी समता और उनकी स्वार्थरहित बुद्धीयही उनकेसिद्धीका परम गुढ़ तत्व है जिसका हमारे सांप्रत के नेताओं में बिशेष कर लोपहोसा है।

समाज सुधार के लिये ज्ञानदेवने पहिलेही आरंभकिया भगवद्गीताता की अपनी विस्तृत ज्ञानेश्वरी टोका द्वारा सर्व साधारणो को कर्म मार्ग का परिचय करवाया समाजके चित्त मे कर्म प्रधानताका बीजारोपण किया। तद्नतर महाराष्ट्र मे और अनेक नेता निर्माण हो शनैः समाज के अन्तिमध्येय साध्य करने के योग्य बनाते गये।

धर्म की जाग्रती होगई कर्म मार्ग की उपयोगिता को समझ गये अतएव उसपर आरूढ हो कार्य करने को सुसज्ज हो गये। इन साधु संतों के सदुपदेश के अमृत तुल्य अंजन से उनकी आंखें खुलपडी। धर्म की हानी और उसपर होने वाले आघातों ने उनके हृदय विदीर्ण कर छोड़े। जिस धर्म पर उनका अविश्वास था अब सब उसका नाश हो वे पुनीत होगयेथे। इनके उपदेशके तेजसे समाज का अज्ञान तम जाता रहा। उन्नती का साज सज गया पर तिस पर कुछ थोड़ा अवकाश था।

ज्ञानदेव, तुकाराम, तुलसीदास, इत्यादि पूर्व नेताओं को समाज में धर्म जाग्रती करने काही कार्य सौंपा गयाथा। वे जो

कुछ कहते थे उसका प्रति बिंब उनके कृति पर अवश्य था। यही बात आज हमारे भारतीय नेतागणों में अत्यन्त सूक्ष्म भाव से दृगोचर होती है। यही कारण है कि हमारे हिंदी नेता, अत्यन्त परिश्रम करने पर भी और सब प्रकार योग्य होनेपर भी शोभा पूर्ण विजय माला उनके गले में शोभा देती हुई नहीं दृगोचर होती है जो जनताने नितान्त प्रेम और भक्ती के साथ हमारे पूर्व इसी भारत वर्ष में अपने नेताओं को पहनाई थी। हमारे नेता लेकचर खूब देंगे; अपने लेखों से मासिक के कालम के कालम ठसाठस भर देंगे, इतनाही नहीं जिस विभाग में भारत की गिरी हुई दशा देखेंगे उसी में सुधार करने लिये कटिबद्ध हो भारत दुर्दशा पर अश्रुमोचन करते हुवे देख पड़ेंगे। पर जब कोई स्वार्थ पूर्ण-स्वत: के हानि लाभ का प्रश्न उपस्थित है, जब कभी उनके मान पर आघात होने लग जाते हैं या जब उनके कोई कार्य का समाज निषेध करने लग जाती है तब वही नेता समाज में वक्तता द्वारा दिये हुवे वचन को भूल कर और और अपने देश भाइयों के लिये सहानभूती व्यक्त करना साफ भूल कर उसी के विपरित कार्य करते हुवे देख पड़ते हैं। हमारे समाज में निस्वार्थी नेता कुछ थोड़े अवश्य है पर ऐसे

प्राय: बहुत ही कम हैं अतएव उनका उल्लेख करना ही निरर्थक है।

भारत में धर्म की जाग्रती पूर्व कालीन साधु संतों के प्रभाव और प्रयत्न से पूर्णता के सीमा को पोहोच चुकी थी। क्रमश: इन्हीं भारत वासियों को यह मालूम होगया था कि धर्म की और देश की दुर्दशा होगई है, हिन्दू धर्म पर तथा हिन्दुत्व पर यवनो का अत्याचार प्रति दिन बढ़ता जाता है और हिन्दू धर्म तत्वों से अज्ञान हिन्दू लोभ के वश हो अपने धर्म का—सर्वस्व का नाश करते ही जाते हैं। अन्त में उनको यह भी विदित हुवा कि उन्नती करना आवश्यक है और उन्नती करना उन्ही के प्रयत्नो पर निर्भर है। वे सोचने लगे कि यदि हम प्रयत्न न करें। और यदि हम भारत उद्धार के लिये जो कुछ कार्य पूर्वजो ने किये है उनका अनुकारण करनेका प्रयत्न न करें तो भारत की दुर्दशा प्रति दिन बढ़ती हुई अल्पही काल में भारतका गौरव और श्रेष्टता नष्ट भ्रष्ट हो जायगी। उन्नती के इस शिखर तक हिन्दी संसार आपहुंचा। 'स्वदेश' और 'स्वाभिमान' का उन्हे पूरा परिचय हो चुका। उनको अपने

देश का केवल अभिमान अभिमान नहीं रखते थे किन्तु उसके लिये अपने प्राण भी छोड़ने के लिये कटिबद्ध थे। इस प्रकार उन्नती को भूमि सब प्रकार योग्य बन चुकी थी। केवल उस में बीजारोपण की अवधी थी और इसी अवधी के पूर्णता के लिये समस्त भारत के नेता, धर्म तथा राज क्रान्ती के श्रेष्ट उत्पादक, प्रखर वैराग्य शील और भारत कुल भूषण श्रीसमर्थ रामदास ने जन्म लिया।

भारत संत मालिका में अनेक पूज्य साधु निर्माण हुए पर इस मालिकाके मेरुमणिका स्थान प्राय: रामदासकोही दियागयाहै और संतों ने केवल धर्म का ही प्रचार किया। पर स्वदेश प्रेम की जाग्रती करने में वे शिथिल थे। वे प्राय: संसारसे दूरही रहते और आत्म कल्याण करते हुये दुसरों को धार्मिक बनाते हुये उनका जीवित कल्याण कर देते थे। पर रामदास सदाही प्रपंच के निकट रह कर जन समूह को सुपथ गामी बनाने में स्वदेश स्वधर्मके लिये श्रद्धा तथा प्रेमकी वृद्धी करने में, उद्युक्त रहे। वे अपने शिष्यों को संसार त्याग करने का उपदेश बहुत ही कम देते थे। किन्तु उन्हें संसार में ही रहकर देश तथा आ-

न्मोन्नती का मार्ग बतलाते थे। यही कारण है कि वे श्रेष्ट, पूजनीय, अनुकरणीय और सर्वमान्य समझे जाते हैं और उन्हें संत मालिका में श्रेष्ट स्थान दिया गया है।

रामदास के वंशावली के मूल पुरुष कृष्णाजीपंत ठोसर थे। इनके पांच पुत्र थे और पांचवे पुत्र का नाम दशरथ पंत था। दशरथ पंत के अनंतर २० वो पीढ़ी में सूर्याजी पंत निर्माण हुवे। 'जांब' गांव की जमीदारी इन्ही के बश पुरुष के स्वाधीन थी। सूर्याजी पंतभी इसी पूर्वार्जित वृतिपर निर्वाह किया करते थे। यही हमारे चरित्र नायके के जनक हैं। आपके पत्नी का नाम राणूबाई था। दोनोही नितान्त धर्म शील थे। सूर्याजी पंत ने १२ वर्ष तक सूर्य की आराधना और तपस्याकी थी। राणूबाई भी परम सुशीला, सदगुणी, पतिव्रता और विदुषीथी दोनोही रामचन्द्र के कथा श्रवण में या पूजन भजन में अपनी जीवनी व्यतीत करते थे। सूर्याजिपंत को राणूबाई से दो पुत्र रत्नो का लाभ हुवा। एक पुत्र का नाम गङ्गाधर और दूसरे का नारायण था। गङ्गाधर का शा० १५२७ में और नारायण का तीन वर्ष के अनन्तर अर्थात् शा० १५३० में जन्म हुवा।

सूर्याजी पंत के पूर्वज प्राय: सभी रामचन्द्र के परम भक्त तथा निस्पृह उपासक थे। कोई अश्चर्य की बात नहीं है कि गंगाधर और नारायण ने इस परंपरा धर्मश्रद्धा को गृहणकर लिया। गंगाधर अपने कनिष्ट बंधू के साथ रामचन्द्र की लीला करते थे। दोनो खेलमेही स्वयं राम बनकर रावणके साथ युद्धकरतेथे और देशको दुष्टोंके बंधन से छुड़ाते थे। इसी प्रकार के खेल थे दोनो बालक खेला करते थे। गंगाधरका व्रतबंध होनेके पश्चात अर्थात नारायण के ७ वर्ष की अवस्था मे पिता सूर्याजी पंत इनदो पुत्रो का सारा भार अपने पत्नी को सौंप इस असार संसार का त्याग कर स्वर्गको प्रयाण किया। राणूबाई साधारण स्त्री न थी- पूर्ण धीर पती सती थी। इन दो पुत्रो का लालन पालन करना अपना शेष कर्तव्य समझ उन्हीं को अपने जीवन का आधार भूत मानकर अपना शेष आयु व्यतीतकरतीथी। गंगाधर का बिवाह तो होगया और नारायण का व्रत बंधभी समारोह से किया गया। राणूबाई की शेष इच्छा यही थी कि किसी न किसी प्रकार नारायण के दो से चार हाथ होजाय। नारायण को यह कहां मंजूर था। नारायणका

अवतार इस असार संसार के अशाश्वत सुखों का उपभोग लेने के लिये नहा हुआ था। विवाह कर के संसार बंधनों में फंसना नारायणके जीवन उद्देश को अपायकारक था। आजन्म ब्रह्मचर्य रहकर नाना प्रकार के देश तथा तीर्थ स्थान को जाना, साधू संतो की संगत करना और परमार्थ ज्ञान का आस्वाद लेते हुये और आत्मोन्नती करते हुवे देश के लिये कुछ कार्य कर बतलाना यही नारायणका जीवन कर्तव्य था। इसी विचारों में वे प्रायः मग्न रहते थ। पाठक! आपने जान लियाहोगा कि नारायणही हमारे इस चरित्रलेखका नायकहै। राणूबाई कैसे जान सकती थी कि नारायण एक साधारण पुत्र नहीं है या उसके जीवनका हेतु ईशोद्धार और धर्मोन्नतीही में अधिष्टित है। वह नहीं जानती थी कि संसार में रह काल व्यतीत करनेके लियेउसका जन्म नहींहुवा है। राणूबाई इन बातों को कैसे जान सकती थी। अर्थात् राणूबाई नारायणके विवाह करने का प्रबन्ध रचने लगी। नारायण अपनी माता के इस हठ से त्रस्त हो आत्म हत्या करने का मन में लाकर एक सरो-वर में कूद पड़ा। भारत की उन्नती का आधार और भविष्यव

का आधार का नाश होनेही को था पर परमेश्वर की कृपा से हमारे नारायण की वहा भी रक्षा हुई। अन्त में माता ने अपनी शपथ दे नारायण को हठात् विवाह करने के लिये सम्मत किया। नारायण निग्रही था और चाहता तो विवाह कदापि न करता। पर माता का अनुपम निष्कपट प्रेम, उसकी वृद्धावस्था और अपना पवित्र कर्तव्य समझ कर उसके मत विरुद्ध काम कर उसे निराश करने का नारायण को धैर्य नहीं था।

प्रिय पाठकगण! हम अपने चरित्र नायक के इतनेही जीवन विभाग से दो बाते भली भांति सीख सकते हैं। हमारे अर्वाचीन भारत नेता जो आज भारत के गांव गांव में भारत उन्नती का घोषण करते हुए बाहेर निकल रहे हैं और बड़ी २ विस्तृत सभाओं में अपनी प्रभाव शाली वक्तृताओं के द्वारा अपने भाइयों की दुरशा को समझाते हुवे भारत के दुःखितो पर आंसू बहाया करते हैं। प्रायः सभीही इस संसार के बंधनों से फँसे हुए हैं। संसार स्वार्थ पूर्ण होने के कारण उनके कार्य भी प्रायः स्वार्थपूर्ण हुआ करते हैं। नारायण ने अपने इस उदाहरण से सिद्ध किया है कि देश सेवा या समाज सेवा तभी

हो सकतो है जब इस संसार के सुखों को तुच्छ समझ कर कार्य किये जांय। कुछ व्यक्तियों को छोड़ प्रायः सभी आधुनिक नेता संसार के बंधनों में बद्ध हैं। यही कारण है कि उनके कार्य स्वार्थ पूर्ण होने से या उनके कर्म और वाणी में भेद होने से उनकी वक्तृताएं या उनके प्रयत्न समाजपर अपना प्रभाव नहीं डाल सकते हैं।

रामदास ने अपने अपने माता के वचनों को अपने इच्छा के विरुद्ध होने हुए भी जो मान देकर अपनी कर्तव्य निष्टता प्रकट की उसका हमारे नेताओं में सब प्रकार से अभाव है। प्रायः भारत के सभा कुटुंब में हम यही देखते हैं कि हमारे नवयुवक आंग्ल विद्या विभूषित—नव भारत संतान अपने वृद्ध माता पिता का अनादर करते हैं और उनसे घृणा करते हैं। इतनाही नहीं किन्तु उनके चित्त स्वास्थ्य को हरण करते हैं और उनका जीवन कष्ट मय कर छोड़ते हैं। कितनेही ऐसे वीर हैं-कारण ये ऐसा करने में बड़ी वीरता समझते हैं—जो अपने माता पिता का आदर प्रायः अश्लील भाषा मेंही करते हैं। और कभी कभी तो माता पिता को

तोड़ना करने की विचित्र घटनायें इस भारत संसारमें होती हुई नजर आती है। हमारे भारत वर्ष में आज माता पिता का यह मान है तो भाई २ में विरोध ही नहीं किन्तु एक अपने भाई या अनाथ भागिनीका सर्वनाश करने में-उनके नष्टकरनेमें कटिबद्धहों या होतेहों तो कोई आश्चर्य कीबात नहीं यदि हमारा भारत इस दुर्दशा का भागी हो । यदि हमारे भारत में माता पिता की मान प्रतिष्टा नहीं है या यदि उनके आशा, सुख, और स्वास्थ्य को नष्ट भ्रष्ट कर उनको कष्ट देनाही सर्वथा इष्ट समझा जाता है तो इस घोर दुर्दशा-अत्याचार के होते हुए भारत के सुधार की आशा करना अत्यन्त भूल है। जब तक भारत में और अनावश्यक आन्दोलनको छोड़ माता पिताके आदर प्रतिष्टा और मान बढ़ाने चेष्टा नहीं कीजाती है तबतक हमारे देश में सती कैसी पैदा हो सकती है, भारत की उन्नती करने वाले नवयुवक क्यों निर्माण हो सकते है और सन्तपुरुषों से व सत्‌चरित्रों से भारत क्योंकर पुनीत हो सकता है। जबतक इसका कोई प्रबन्ध नहीं, है जबतक माता पिता की सेवा में हमारा अनुराग नहीं है और जबतक देश बंधुत्व के प्रेम का हमारे चित्त में आ-

बिर्भाव नहीं है किन्तु केवल मुंह की वातेंही बातें हैं तो चाहे हम पत्र निकाले, मासिक निकाले, चाहे सुन्दर २ लेख प्रकाशित करें या चाहे समाज, सोसाइटियां रोज स्थापित करें हम से वह उन्नती लाखोंही हाथ दूर रहेगी जिसके प्राप्तिके लिये हमारा जीवन कलह है।

नारायणने अपने माता की इच्छा देख और उसकी आज्ञा को स्वीकार कर अपनी इच्छा विरुद्ध विवाह करना तो स्वीकार कर लिया। विवाह के सब प्रबंध होने लगे। योग्य कन्या के साथ नारायण का विवाह निश्चित किया गया। सब कुलाचार तथा शास्त्राचार के अनंतर जब विवाह के लिये विवाह मंडप में कन्याके साथ नारायणको उपस्थित किया गया और बीच में अंतरपट फैला कर पुरोहित 'सावधान' की घोषणा करते हुए विवाह रज्जुका फांस नारायण के गले में डालने लगे, नारायण की आंखों से अविरल अश्रु प्रवाह होने लगा। इधर माता की आज्ञा तो दूसरी ओर देश की सेवा। इन दोनों समान शक्तियों ने नारायण के चित्त वृत्ती को अपनी अपनी ओर खींचना आरंभ किया। अन्त में फल यह हुआ कि ब्राह्मण के मुंह से 'सावधान' शब्द का उच्चार होतेही इस असार संसार

के कष्टमय संकटों से पूर्ण सावधान हो देशसवाही करना नारायण ने निश्चित किया और विवाह रज्जु को तोड़ फाड़ कर विवाह मंडप से भागना ही नारायण ने उचित समझा और नाशिक में पंचवटी में रहना नियत किया। और इस प्रकार देश सेवा ने मात्राज्ञा पर विजय पाया। नारायण यदि विवाह रज्जु में बद्ध होजाते तो हम नहीं कह सकते कि भारत वर्ष के इतिहास में क्या परिवर्त्तन होता। वहां भिक्षा वृत्ती से अपना निर्वाह कर श्रीरामचंद्र की सेवा में नारायण अपना काल व्यातीत करने लगे। नारायण की निस्सीम, दृढ़ भक्ति को देख सब लोग उसे 'रामदास' कहकर संबोधित करने लगे।

रामदास ने संसार को त्याग कर उन्होने कोई समाज की स्थापना नहीं की बाल्य या अरठ विवाह ,की या अन्य विवाहों की चर्चाएं विस्तारित नहीं की और न कोई अनाथ बालिका भमही खोला। पूर्वजों के धर्म भाव को देखकर उन्नती के और आवडंबरों को छोड़ रामदास ने अपना काल ईश प्राप्ति में व्यतित करना उचित समझा।

बारा वर्ष के घोर तपस्या करने के अनंतर देश सेवा कर ने की योग्यता और शक्ति—बल प्राप्त कर देश की स्थिती स्वयं आंखों से देखने के लिये, भारत यात्रा करने के लिये निकले। काशी, हरिद्वार, द्वारका इत्यादि सब तीर्थ स्थानों के दर्शन करते हुवे पुनः दक्षिणमें आकर "परल"में अपना निवास स्थान नियत किया। इस स्थान में रह कर भारत दुर्दशा के सुधार करने की महत्व पूर्ण समस्या को हल करने के विचार में मग्न रहते थे। 'युक्ती' और 'शक्ती' दोनो का महत्व पूर्ण कार्य में एक सीही आवश्यकता होती है। भारत के उन्नती को सुलभ करने के लिये उपाय-योजना-युती तो श्रीरामदास ने निश्चित करली थी पर शक्ती का अभाव होने से उन्हे कुछ काल तक शांत रह ना पड़ा। भजन पूजन में योग्यता देख कर धार्मिक तथा अन्य उपदेश करने में तथा अपना मन्तव्य सिद्ध करने के लिये यो ग्य शक्तिके खोजन में ही अपना काल व्यतीत किया करते थे। उनके रस भरित और चित्ता कर्ष उपदेशामृत का मधुर स्वाद को देख कर अनेक प्रकार के पुरुष और स्त्री परलमें आ निवा-स करते और उपदेशामृत पान कर आपना काल आनंद पूर्वक व्यतीत करते थे। अनेक पुरुष-कोई प्रेम से, कोई अपनी इच्छा

पूर्ण करने के लिये, कोई दर्शन करनेही के लिये कोई तो उनकी योग्यता की परीक्षा करने के लिये—क्या आस्तिक और क्या नास्तिक—सब प्रकार के पुरुष उनके दर्शन करने को आते और उनके गंभीर—तेजस्वी मूर्ती को देख कर और उनके उपदेश प्रवाह में उमंग लेते हुवे अपना घरद्वार संसार के सुख और आनन्द को लाथ मार कर वहीं रहा करते थे और कालान्तर से अपने अपने स्थान को चले जाते थे। इस प्रकार महाराष्ट्र में अन्य साधू के साथ श्रीरामदास की कीर्ति महाराष्ट्र में फैलती हुई महाराष्ट्र के संरक्षक, गो ब्राह्मण प्रति पालक, शूर वीर शिरोमणी श्री शिवाजी महाराजके कानों तक आपहुंची।